इकाई 3 प्रमुख स्कन्ध–संहिता

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 संहिता स्कन्ध का संक्षिप्त परिचय

3.3 संहिता–स्कन्ध की प्रतिष्ठा

- 3.3.1 बृहस्पतिसंहिता
- 3.3.2 गर्गसंहिता
- 3.3.3 पाराशर का संहिता में अवदान
- 3.3.4 रामायण में संहिता के बीज

3.4 संहिता स्कन्ध की प्रगति में वराहमिहिर की भूमिका

- 3.4.1 बृहत्संहिता

3.5 संहिता स्कन्ध का उन्नतिकाल

- 3.5.1 भद्रबाहुसंहिता

3.6 संहिता के उपस्कन्ध व संहिता ज्योतिष की संभावनाएं

- 3.6.1 शकुन
- 3.6.2 स्वप्न
- 3.6.3 सामुद्रिकशास्त्र
- 3.6.4 वास्तु
- 3.6.5 मुहूर्त
- 3.6.6 अर्घ
- 3.6.7 वृष्टि

3.7 सारांश

3.8 शब्दावली

3.9 बोध प्रश्न

3.10 उपयोगी पुस्तकें

3.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- संहिता–स्कन्ध को परिभाषित करने में समर्थ हो सकेंगे।
- संहिता स्कन्ध के इतिहास का निरूपण करने में कुशल हो सकेंगे।
- संहिता स्कन्ध में गर्ग, बृहस्पति के अवदान को निरूपित करने में समर्थ हो सकेंगे।
- संहिता में पाराशर और वराहमिहिर के अवदान को रेखाङ्कित करने में समर्थ होंगे।
- भद्रबाहुसंहिता के स्वरूप को समझाने में कुशल हो सकेंगे।

- संहिता स्कन्ध के उपस्कन्ध एवं संभावनाओं के विवेचन में निपुण हो सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

इसके पूर्व हमने ज्योतिष–शास्त्र के सिद्धान्त स्कन्ध पर एक विहंगम दृष्टिपात के द्वारा इसकी विकास–यात्रा को समझने का प्रयास किया है।

इस इकाई में हम भारतीय ज्योतिष के संहिता–स्कन्ध के स्वरूप और ग्रंथों पर चर्चा करेंगे। यह समष्टि के विषय में फल का निरूपण करता है। सामुद्रिकशास्त्र, रत्नविज्ञान, स्वरोदयशास्त्र, शकुनशास्त्र, मुहूर्तशास्त्र, स्वप्नशास्त्र, भूगर्भशास्त्र (जलविज्ञान) आदि अनेक क्षेत्र संहिता–स्कंध के अन्तर्गत आते हैं ।

इस इकाई में आप इस स्कन्ध के ऐतिहासिक–विकास–क्रम के साथ–साथ इसके विविध स्वरूपों और वर्तमान समय में इसकी सम्भावनाओं का अध्ययन करेंगे ।

3.2 संहिता स्कन्ध का संक्षिप्त परिचय

यदि संहिता के विषयों की बात करें तो वराहमिहिर स्पष्ट रूप से कहते हैं –

दिनकरादीनां ग्रहाणां चारास्तेषु च तेषां प्रकृतिविकृति प्रमाणवर्णकिरणद्युति संस्थानास्तमयोदय– मार्गमार्गान्तरवक्रानुवक्रर्क्षग्रहसमागमचारादिभिः फलानि नक्षत्रकूर्मविभागेन देशेष्वगस्त्यचारः। सप्तर्षिचारः। ग्रहभक्तयो नक्षत्रव्यूह ग्रहशृङ्गाटकग्रहयुद्धसमागमग्रहवर्षफलगर्भलक्षणरोहिणी–स्वात्याषाढीयोगाः सद्योवर्षण कुसुमलतापरिवेषपरिघवनोल्कादिग्दाहक्षितिचलनसन्ध्यारागगन्धर्व– नगररजोनिर्घातार्घकाण्डसस्यजन्मेन्द्रध्वजेन्द्रचापवास्तुविद्याङ्गविद्यावायसविद्यान्तर चक्रमृगचक्रश्वचक्रवातचक्रप्रासादलक्षणप्रतिमालक्षणप्रतिष्ठापनवृक्षायुर्वेदोदगार्गलनी राजनखञ्जनकोत्पातशान्तिमयूरचित्रकघृतकम्बलखड्गपट्टकृ कवाकुकूर्मगोऽजाश्वेभपुरुषस्त्रीलक्षणान्यन्तःपुरचिन्तापिटकलक्षणोपानच्छेद–चामर दण्डशयनाऽऽसनलक्षणरत्नपरीक्षा दीपलक्षणं दन्तकाष्ठाद्याश्रितानि शुभाऽशुभानि निमित्तानि सामान्यानि च जगतः प्रतिपुरुषं पार्थिवे च प्रतिक्षणमनन्यकर्माभियुक्तेन दैवज्ञेन चिन्तयितव्यानि । (बृहत्संहिता, अध्याय २)

अर्थात् सूर्य आदि ग्रहों के चार = विविध राशियों, नक्षत्रों में गमन के आधार पर समाज में होने वाला शुभाशुभफल–कथन संहिता का विषय है । इस चार के दौरान ग्रहों की प्रकृति = स्वभाव, विकृति = विकार, उनके बिम्बों के मान, उनके वर्ण, रश्मियों की कान्ति, संस्थान = ऊर्ध्व–अधोगमनादि के कारण तोरण, हल आदि विविध आकार, सूर्य से अतिशय संयोग के कारण अस्तंगतत्व, मार्गमार्गान्तर = अज–गजादि वीथियों में उन ग्रहों का संचरण, वक्र = मंगल आदि ५ तारा ग्रहों की वक्रगति से होने वाला फल, अनुवक्र = वक्रगति के पश्चात् पुनः स्पष्टगति से गमन का विचार, ऋक्ष–ग्रहसमागम = नक्षत्रों के साथ ग्रहों की युति का विचार, एवं नक्षत्रों में ग्रहों के दक्षिणोत्तर गमन के द्वारा उत्पन्न होने वाले फलों का विवेचन संहिता में किया जाता है। देशेषु नक्षत्रकूर्मविभागेन = सम्पूर्ण भारतवर्ष (प्राचीन बृहत्तर भारत) को २७ नक्षत्रों के द्वारा ६ भागों में विभाजित करके इसके आधार पर, अगस्त्य के चार (गमन), सप्तर्षियों के गमन का विविध स्थलों पर फल का निर्धारण, ग्रहभक्ति = सूर्य आदि ग्रहों का देश, वर्ण, व्यवसाय, वस्तुओं पर अधिकार (आधिपत्य), नक्षत्रव्यूह = नक्षत्रों का देश, वर्ण, व्यवसाय, वस्तु आदि पर आधिपत्य का विचार, शृङ्गाटक = ग्रहण के समय ग्राह्य (छाद्य) बिम्ब के श्रृंग के आधार पर अथवा तारा ग्रहों के एक नक्षत्र में आने से श्रृंग आदि आकृति–विशेष के आधार पर फल–विचार, ग्रहयुद्ध = ग्रहों के मध्य उनके दक्षिणोत्तर व

ऊर्ध्वाधर स्थिति से उत्पन्न युद्ध का विचार, समागम = चन्द्रमा के साथ ग्रहों की युति का विचार, ग्रहवर्षफल = ग्रहों के वर्षाधिपति (संवत्सर–स्वामी) होने का फल, गर्भलक्षण = वर्षाकाल का ज्ञान, 'रोहिणी–स्वाती–आषाढी' आदि वर्षा के विविध योग, सद्योवर्षण = शीघ्र ही वृष्टि होने के योग, कुसुमलता = वृक्ष आदि के लक्षण व शुभाशुभ फल, परिवेष = प्रतिसूर्य की परिधि (मण्डल) का विचार, परिघ = सूर्योदय और सूर्यास्त के समय मेघों की स्थिति का विचार, पवनोल्कादिग्दाहक्षितिचलन = वायु–प्रवाह, उल्कापात, दिग्दाह और भूकम्प के लक्षण और शुभाशुभ विचार, सन्ध्याराग = सन्ध्याकाल के रक्तत्व का विचार, गन्धर्वनगररजोनिर्घात = आकाश में बनने (दिखाई देने वाले) गन्धर्वनगर एवं अन्य के लक्षण, अर्घकाण्ड = वस्तुओं के मूल्य का विचार, सस्यजन्मेन्द्रध्वजेन्द्रचाप = उपज की उत्पत्ति–काल, इन्द्रधनुष आदि के लक्षण, वास्तुविद्या = गृह इत्यादि वास्तु–निर्माणशास्त्र, अंगविद्या = प्राणिमात्र द्वारा अंग–विशेष के स्पर्श के अनुसार फल–कथनविद्या, वायसविद्यान्तरचक्रमृगचक्रश्वचक्र = शकुन शास्त्र में कौवे, मृग, कुत्ते आदि की चेष्टाओं के द्वारा फल–कथनविद्या, वातचक्र = आठों दिशाओं में बहाने वाली हवाओं के फल, प्रासादलक्षणप्रतिमालक्षणप्रतिष्ठापन = राजगृह, देवगृह, प्रतिमा के स्वरूप और प्रतिष्ठा का वर्णन, वृक्षायुर्वेद = वृक्षों की चिकित्सा, उदगार्गल = भूमिस्थ जल के अन्वेषण की विधियां, नीराजन = जलक्षेपण, खञ्जनक = खंजन पक्षी का लक्षण, उत्पातशान्ति = ३ प्रकार के दिव्य, आन्तरिक्ष एवं भौम उत्पातों के लक्षण एवं शान्ति के उपाय, मयूरचित्रक = अन्य संहिता–विषय, घृतकम्बल = पुष्यस्नानविचार, खड्गपट्ट = राजा के खड्ग, मुकुट आदि के लक्षण, कृकवाकुकूर्मगोऽजाश्वेभपुरुषस्त्रीलक्षणानि = मुर्गा, कछुआ, गाय, बकरी, हाथी एवं स्त्री–पुरुष के लक्षण, अन्तःपुरचिन्ता = अंतःपुर में स्थित स्त्रियों के विषय में ज्ञान, पिटकलक्षणोपानच्छेदचामरदण्डशयनाऽऽसनलक्षण = पिटक का लक्षण, जूते या वस्त्रों में मूषक आदि के कर्तन से उत्पन्न छेद–दर्शन का फल, चंवर, दंड आदि धारण करने वालों के लक्षण, रत्नपरीक्षा = रत्नों का परीक्षण, दीपलक्षण, दन्तकाष्ठाद्याश्रितानि शुभाऽशुभानि निमित्तानि = दातुन की लकड़ी और कर्ता के विषय में शकुन पर आधारित शुभ–अशुभ फल, एवं सामान्यानि च जगतः प्रतिपुरुषं पार्थिवे च प्रतिक्षणमनन्यकर्माभियुक्तेन दैवज्ञेन चिन्तयितव्यानि = प्रत्येक पुरुष से प्रतिक्षण घटित होने वाले अन्य निमित्त, लक्षण आदि का विचार संहिता के ज्ञाता दैवज्ञ को करना चाहिए।

इस परिभाषा से ज्ञात हुआ कि प्रकृति, प्राणी और ग्रहों के मध्य सम्बन्ध को स्थापित करने वाला शायद ही कोई विषय ऐसा हो जो 'संहिता' स्कन्ध से अछूता रहे ।

3.3 संहिता स्कन्ध की प्रतिष्ठा

इस संहिता स्कन्ध के विषयों का अधिकता से वर्णन ज्योतिष–शास्त्र की प्रतिष्ठा के समय से ही वेदों एवं वेदांग–साहित्य में स्मृतियों, पुराणों में है । इनमें आचार्यों के मत यत्र–तत्र प्रकीर्ण अवस्था में प्रसंगवश हैं, जिनका आगे चलकर संहिता–ग्रंथों में संकलन किया गया। इनमें से कुछ संहिताएं मिलती हैं तो अधिकतर लुप्तप्राय हैं । 'गर्गसंहिता', 'बार्हस्पत्य संहिता', 'काश्यपसंहिता', 'पाराशरसंहिता' जैसे कुछ संहिता ग्रन्थ क्वचित् अंशों में तो कहीं पूर्णरूपेण मिलते हैं। किन्तु इतना निश्चित है कि अनेकों आचार्यों के संहिता–ज्योतिष–विषयक मत मिलते हैं जिनका संकलन परवर्ती आचार्यों यथा वराहमिहिर ने 'बृहत्संहिता' में, बल्लासेन ने 'अद्भुतसागर' में और भाद्रबाहु ने 'भद्रबाहुसंहिता' में क्रमशः किया है।

3.3.1 बृहस्पति संहिता

आचार्य बृहस्पति का यह संहिताग्रन्थ है, जिसका मुख्य विषय मुहूर्त हैं । इस ग्रन्थ में कुल २६ अध्याय हैं जिनमें ४६२ श्लोक उपलब्ध होते हैं । मुख्य रूप से यह ग्रन्थ मुहूर्तविधान का निरूपक है।

मुहूर्त–विधान के प्रसंग में बृहस्पति कहते हैं कि काल अर्थात् समय में स्वभाव से ही शुभता एवं अशुभता रहती है, ऐसा नहीं कि कोई समय पूर्णरूप से शुभ है और पूर्ण रूप से अशुभ है अतः कम–से–कम दोष वाले शुभ मुहूर्त को जानना चाहिये। जब दोष अति स्वल्प हों, नगण्य हों, ऐसा काल भी कार्य के लिये शुभ ही होता है।

बृहस्पतिसंहिता के दूसरे अध्याय में ५७ श्लोक हैं। यहाँ अश्व, गज तथा स्वर्ण आदि धातुओं के पात्रों के संग्रह का मुहूर्त बताया गया है तथा आभूषण के क्रयविक्रय के शुभ ग्रहयोग भी बताये गये हैं। आगे वार तथा नक्षत्र की युति से होने वाले शुभाशुभ योगों को बताया गया है। जैसे सोमवार को यदि चित्रा, श्रवण और सौम्य नक्षत्र हो तो सुधायोग होता है, यह शुभ योग शुभकारक होता है –

चित्राश्रवणसौम्याः स्युः यदि शीतांशुवारगाः।
एते चापि सुधायोगाः सर्वशोभनशोभनाः।। (बृह०सं० २।२७)

तीसरे अध्याय में बृहस्पति जी ने ब्रह्माजी के द्वारा बताये गये तिथि, करण, राशि, अंश, लग्न तथा ग्रहयोग से होने वाले अशुभ योगों का विस्तार से निरूपण किया है। साथ ही यह भी बताया है कि गुरु तथा शुक्र के अस्त होने पर विवाह तथा चूड़ाकरण, उपनयन नहीं करना चाहिये। आगे के अध्यायों में सभी संस्कारों के मुहूर्तों पर आचार्य ने विशद विवेचन किया है ।

3.3.2 गर्गसंहिता

आचार्य गर्ग का यह ग्रन्थ मुख्यतः कृषि एवं वृष्टि के विषयों का प्रतिपादन करता है । मेघों के स्वरूप, विद्युत् एवं वायु से वर्षा का ज्ञान, संक्रान्ति में वृष्टि का फल तथा काक–निलय (कौए के घोंसले) आदि से वर्षा के ज्ञान सम्बन्धी विषय भी इस ग्रन्थ में मिलते हैं। काकनिलय–शुभाशुभविचार से सम्बद्ध एक श्लोक इस प्रकार है –

गार्भिके कार्तिके मासि चतुर्मासेषु वर्षति।
सुभिक्षं जायते तत्र सस्यसम्पत्तिरुत्तमा।।(गर्गसंहिता १)

तदनन्तर मेघों का वर्णन करते हुए आचार्य कहते हैं कि मेघ श्वेत, पीत, कृष्ण, ताम्र तथा सिन्दूरवर्ण के होते हैं।

मार्गशीर्षमास के विवरण में बताया गया है कि मार्गशीर्ष आदि पाँच मासों के शुक्लपक्ष में यदि किसी तिथि का क्षय होता है तो दुर्भिक्ष होता है, राजा के छत्र–भंग होने का भय रहता है तथा युद्ध की सम्भावना होती है–

मार्गादिपञ्चमासेषु शुक्लपक्षे तिथिक्षयः ।
दुर्भिक्षछत्रभंगो वा जायते राजविग्रहः।।(गर्गसं० २७)

आगे बताया गया है कि मार्गशीर्षमास की सप्तमी तथा नवमी तिथि को यदि ईशान दिशा में मेघमण्डल दिखाई दे तो अल्पवर्षा होती है अथवा तेज हवा चलती है। यथा–

मार्गशीर्षे यदा मासि सप्तमी नवमी दिने।
ईशानादिसमाश्रित्य दृश्यते मेघमण्डलम्।।
स्तोकं वर्षति पर्जन्योऽथवा वातमादिशेत्।(गर्गसं० २८–२९)

3.3.3 पाराशर का संहिता में अवदान

महर्षि पराशर ने न केवल ज्योतिष के फलित स्कन्ध पर सिद्धान्तों का निर्माण किया अपितु संहिता स्कन्ध पर भी अपना मत रखा है। उनके मत पाराशरस्मृति, पराशर संहिता और कृषिपाराशर आदि में मिलते हैं । बृहत्संहिताकार भी यत्र–तत्र उनके मतों का उल्लेख करते हैं। कृषि विषय पर अपने संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित ग्रन्थ कृषिपराशर के आरम्भ में ही अन्न और कृषि के महत्त्व को अभिव्यक्त करते हुए आचार्य कहते हैं –

अन्नं प्राणा बलं चान्नमन्नं सर्वार्थसाधनम्।
देवासुरमनुष्याश्च सर्वे चान्नोपजीविनः।।
अन्नं हि धान्यसञ्जातं धान्यं कृष्या विना न च।
तस्मात् सर्व परित्यज्य कृषि यत्नेन कारयेत्।।(कृषिपाराशर १।६–७)

अर्थात् अन्न ही प्राण, अन्न ही बल तथा अन्न ही समस्त प्रयोजनों का साधन है। देव, असुर, मनुष्य सभी अन्न के उपजीवी होते हैं। यह अन्न धान्य से ही उत्पन्न होता है और धान्य कृषि के बिना प्राप्त नहीं हो सकता, अतः प्रयत्नपूर्वक कृषिकर्म करना चाहिये।

आगे पराशर जी बताते हैं कि कृषिकर्म का मूल वृष्टि पर ही निर्भर है, यह वृष्टि जीवन का भी मूल है, अतः सर्वप्रथम वृष्टिका ज्ञान करना चाहिये–

वृष्टिमूला कृषिः सर्वा वृष्टिमूलं च जीवनम्।
तस्मादादौ प्रयत्लेन वृष्टिज्ञानं समाचरेत्।।(कृषिपाराशर २१)

तदनन्तर पराशर जी ने ज्योतिष के आधार पर संवत्सर के राजा–मन्त्री आदिके ज्ञान के द्वारा वृष्टिज्ञान के तथा मेघों के स्वरूप द्वारा वृष्टिज्ञान के उपायों का वर्णन किया है और आवर्त, संवर्त, पुष्कर तथा द्रोण नामक चार मेघ एवं उनके लक्षण तथा उनसे होने वाली चौत्रादि बारह मासों में वृष्टि (अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि) का वर्णन किया है। सद्योवृष्टि के लक्षणों को बताते हुए पाराशर जी कहते हैं कि मंगल एवं शनि आदि ग्रहों के एक राशि से दूसरी राशि पर जाने के समय पर भी वृष्टि होती है। तदनन्तर उन्होंने ग्रहों तथा नक्षत्रों के योगसे अनावृष्टि के लक्षण भी दिये हैं।

कृषिपाराशर ग्रन्थ के तृतीय अन्तिम कृषिखण्ड में कृषिपुराणज्ञ पराशर ने कृषि के सम्बन्ध में बताया है कि कृषिकर्म, गायें, व्यापारिक ज्ञान, स्त्रियाँ एवं राजकुल की निरन्तर देखभाल करते रहनेपर ही सफल होते हैं। थोड़ी देर के लिये भी इनकी उपेक्षा या अवहेलना कर दी जाय तो ये कष्टप्रद हो जाते हैं–

कृषिर्गावो वणिग्विद्याः स्त्रियो राजकुलानि च।
क्षणेनैकेन सीदन्ति मुहूर्तमनवेक्षणात्।।(कृषिपाराशर ३।३)

पाराशर के अनुसार वृक्षों को काटने, पृथ्वी को जोतने, आदि कृषि–कर्मों से कृमि–कीट आदि अनेक जीव मर जाते हैं, तज्जन्य पाप से मुक्त होने के लिए किसान को खलयज्ञ करना चाहिये –

वृक्षं छित्त्वा महीं भित्त्वा हत्वा च कृमिकीटकान्।
कर्षकः खलयज्ञेन सर्वपापैः प्रमुच्यते।।(पराशरस्मृति २ । १५)

यह यज्ञ फसल की कटाई के बाद अन्न की राशि से खलिहान में ही किया जाता है और इसमें विशेष रूप से कृषि द्वारा प्राप्त अन्न की राशि में से सर्वप्रथम सुपात्र बाह्मणों को अन्न–दान करना चाहिए, तथा फसल का षष्ठांश (छठा हिस्सा) व राजकोष व देवताओं के निमित्त प्रदान करना चाहिए ।

3.3.4 रामायण में संहिता के बीज

'वाल्मीकि रामायण' में बहुत्र संहितास्कन्ध के सूत्रों का स्पष्ट संकेत मिलता है । यद्यपि सभी का वर्णन यहां अनापेक्षित है तथापि 'स्थालीपुलाकन्याय' से एक दो उल्लेख आपकी जानकारी के लिए उपस्थापित कर देना उचित होगा ।

राजा दशरथ, प्राकृतिक उत्पात के दर्शन–विषयक अपने दुःस्वप्न, एवं खगोलीय स्थिति की सूचना देते हुए भविष्यमाण अशुभ की आशंका जताकर अपने सबसे ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम को राज्याभिषेक हेतु शुभ मुहूर्त बताते हुए उन्हें तदर्थ प्रेरित करते हैं –

अपि चाद्याशुभान् राम स्वप्नान् पश्यामि राघव ।
सनिर्घाता दिवोल्काश्च पतन्ति हि महास्वनाः।।
राजा हि मृत्युमाप्नोति घोरां चापदमृच्छति ।।
अद्य चन्द्रोऽभ्युपगमत् पुष्यात् पूर्वं पुनर्वसुम्।
श्वः पुष्ययोगं नियतं वक्ष्यन्ते दैवचिन्तकाः।।(वा०रा० २।४। १७–२१)

अर्थात् प्रिय राम! ज्योतिषी कह रहे हैं कि मेरे जन्मनक्षत्र को सूर्य, मंगल और राहु नामक भयंकर ग्रहों ने आक्रान्त कर लिया है। ऐसे अशुभ लक्षणों का प्राकट्य होने पर राजा आपत्ति में पड़ जाता है और उसके मृत्यु की सम्भावना भी हो जाती है । अतः तुम युवराज पद पर अपना अभिषेक करा लो । आज चन्द्रमा पुष्य से एक नक्षत्र पहले पुनर्वसु पर विराजमान है। अतः निश्चय ही कल वे पुष्य नक्षत्र पर होंगे ।

भगवान् श्रीराम के वनगमन के समय के अपशकुन का वर्णन करते हुए वाल्मीकि जी कहते हैं –

त्रिशङ्कुलोहिताङ्गश्च बृहस्पतिबुधावपि।
दारुणाः सोममभ्येत्य ग्रहाः सर्वे व्यवस्थिताः।
नक्षत्राणि गताचींषि ग्रहाश्च गततेजसः।
रामे वनं प्रव्रजिते नगरं प्रचचाल तत्।।
दिशः पर्याकुलाः सर्वास्तिमिरेणेव संवृताः।
न ग्रहो नापि नक्षत्रं प्रचकाशे न किञ्चन ।।(वा०रा० २। ४१ । ११–१४)

अर्थात् राम के वन जाने पर त्रिशंकु, मंगल, गुरु, बुध तथा अन्य समस्त ग्रह शुक्र, शनि आदि रात में चन्द्रमा के पास वक्र गति से पहुंचकर क्रूर–कान्तियुक्त होकर स्थित हो गये। नक्षत्रों की कान्ति फीकी पड़ गयी। ग्रह निस्तेज हो गये। वे सबके–सब आकाश में विपरीत मार्ग में स्थित हो धूमाच्छन्न प्रतीत हो रहे थे। आकाश में छायी हुई मेघमाला वायुवेग से उमड़े हुए समुद्र–जैसी लगती है। नगर में भूकम्प आ गया। समस्त दिशाएँ व्याकुल हो उठीं, उनमें अन्धकार छा गया। उस समय न कोई ग्रह और न ही कोई नक्षत्र प्रकाशित होता है।

लंका में जब सीता जी का धैर्य टूटने लगा और वो शोकाकुल हो गयीं तब त्रिजटा ने रात्रि में देखे हुए अपने स्वप्न को बताकर आने वाले शुभ संकेतों से उनका ढाढस बंधाया । स्वप्न का वर्णन करते हुए उसने कहा –

राघवश्च पुनर्दृष्टश्चतुर्दन्तं महागजम् ।।
आरूढः शैलसङ्काशं चकास सह लक्ष्मणः ।
रावणस्य सुताः सर्वे मुण्डास्तैलसमुक्षिताः ।
वराहेण दशग्रीवः शिशुमारेण चेन्द्रजित् ।।
उष्ट्रेण कुम्भकर्णश्च प्रायातो दक्षिणां दिशम् ।
लङ्का दृष्टा मया स्वप्ने रावणेनाभिरक्षिता।
दग्धा रामस्य दूतेन वानरेण तपस्विना।।(वा०रा० ५।२७।१२–३८)

अर्थात् मैंने स्वप्न में देखा रघुनाथ जी आकाशगामी हाथीदाँत की बनी शिबिका, जिसमें हजार घोड़े जुते को श्वेत पुष्पों की माला धारण किये तथा श्वेत वस्त्र पहने, लक्ष्मण के साथ लंका में पधारे हैं। मैंने यह भी देखा कि सीता श्वेत वस्त्र पहने श्वेत पर्वतशिखर पर जो समुद्र से घिरा है, बैठी हैं। वहाँ वे राम से मिलीं। साथ ही मैंने रघुनाथ को विशाल गजराज पर लक्ष्मण सहित आरूढ़ देखा। सत्य–पराक्रमी पुरुषोत्तम राम को लक्ष्मण और सीता सहित सूर्यतुल्य दिव्य पुष्पक विमान पर आरूढ़ हो उत्तर दिशा में गमन करते हुए भी मैंने देखा।मैंने यह भी देखा कि रावण के सभी पुत्र मूंड मुड़ाये तेल में नहा रहे हैं। रावण सुअर पर, इन्द्रजीत तूंस पर, कुम्भकर्ण ऊँट पर सवार होकर दक्षिण दिशा में जा रहे हैं। मैंने रावण द्वारा सुरक्षित लंकापुरी को श्रीरामदूत बनकर आये हुए वेगशाली वानर द्वारा जलाकर भस्म करते देखा। इन स्वप्नों का फल बताते हुए त्रिजटा ने कहा –

अर्थसिद्धिं तु वैदेह्याः पश्याम्यहमुपस्थितम् ।
राक्षसेन्द्रविनाशं च विजयं राघवस्य च ।।

मुझे तो अब जानकी के अभीष्ट मनोरथ की सिद्धि उपस्थित दिखायी देती है। राक्षसराज रावण के विनाश तथा रघुनाथ जी की विजय में कोई अधिक विलम्ब नहीं है।

3.4 संहिता स्कन्ध की प्रगति में वराहमिहिर की भूमिका

आचार्य वराहमिहिर ने यद्यपि ज्योतिष के तीनों ही स्कंधों पर अपनी लेखनी चलाई है और उनकी सभी रचनाएं एक सशक्त हस्ताक्षर ही हैं किन्तु उनके संहिता–ग्रन्थ 'बृहत्संहिता' ने अपनी अमिट छाप छोड़ी है। इस ग्रन्थ ने ज्योतिष के 'संहिता–वाङ्मय' को दो भागों में बाँट दिया – बृहत्संहिता के पूर्व और उसके बाद। बृहत्संहिता का संहिता–स्कन्ध में वही स्थान है जो फलित स्कंध में बृहत्पाराशर–होराशास्त्र का है । वस्तुतः संहिता–स्कन्ध की मर्यादा को सही मायने में इसी ग्रन्थ ने बांधा है । इसलिए संहिता–स्कन्ध में क्या–क्या विषय हैं? इस बात के लिए आरम्भ में भी मैंने बृहत्संहिता की परिभाषा को ही उद्धृत किया है ।

वराहमिहिर की एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि वे ज्योतिष को क्षेत्र या जाति की सीमा में नहीं बांधते हैं और जहां से जो ग्राह्य है उसे वहां से ले लेते हैं । गुणग्राही वराहमिहिर के अनुसार –

म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमुदाहृतम् ।
ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते .....इति । (बृहत्संहिता)

अर्थात् वे यवन भी हमारे ऋषियों के समान पूज्य हैं जिन्होंने भली–भांति शास्त्र को पढ़कर उसे उपस्थापित किया है।

इसलिए चाहे 'बृहज्जातक' हो अथवा 'पंचसिद्धान्तिका' या फ़िर बृहत्संहिता, सर्वत्र उन्होंने सम्बद्ध आचार्यों के मतों को उद्धृत किया है । शायद यही कारण है कि उनके ग्रन्थ न केवल अधिक प्रचलित हुए अपितु अद्यावधि जीवन्त भी हैं ।

बृहत्संहिता ग्रन्थ के निर्माण में आधार तत्कालीन आचार्यों के उपलब्ध मत ही हैं इस तथ्य को आचार्य ने स्वयं बड़ी ही स्पष्टता और कृतज्ञता से स्वीकारा है –

आब्रह्मादिविनिरूसृतमालोक्य ग्रन्थविस्तरं क्रमशः ।
क्रियमाणकमेवैतत्समासतोऽतो ममोत्साहः ।।(बृहत्संहिता, १/२)

अर्थात् प्रथम आचार्य ब्रह्मा जी से लेकर आज तक जितने भी ज्योतिष के विद्वान् हुए हैं उनके मुखारविंद से निकले हुए संहिता विषयक–सिद्धान्तों का आलोडन करके उन सब मतों के सार–रूप ग्रन्थ को निश्चय ही रचने हेतु मेरा उत्साह है ।

3.4.1 बृहत्संहिता

बृहत्संहिता संज्ञक यह महान ग्रन्थ १०७ अध्यायों में विभक्त है । प्रथम उपनयनाध्याय में मंगलाचरण, ग्रन्थ–प्रयोजन आदि विषय हैं। दूसरे साम्वत्सर सूत्राध्याय के ३६ श्लोकों में आचार्य ने दैवज्ञ के लक्षण, गुण, प्रशंसा आदि के साथ तीनों स्कन्धों के लक्षण बताए हैं। तीसरे आदित्यचाराध्याय में सूर्य के विभिन्न राशियों में संचरण, वर्ण, कान्ति आदि के आधार पर फल बताए गए हैं । इसी प्रकार चौथे अध्याय से लेकर ग्यारहवें अध्याय तक चन्द्र से लेकर अन्य ग्रहों के संचरण–फल निरूपित हैं । १२वें अगस्त्यचार एवं १३वें सप्तर्षिचार में भी अगस्त्य तारे व सप्तर्षि मंडल के संचरण–फल का निरूपण है । १४वें कूर्मविभागाध्याय में विभिन्न देशों का नक्षत्रों के आधार पर विभाग करके तदनुरूप फल बताया गया है। इसी प्रकार १५वें नक्षत्रव्यूहाध्याय में सभी नक्षत्रों के आश्रित पदार्थों, जातियों का विभाजन किया गया है । १६वें ग्रहभक्तियोगाध्याय में ग्रहों के देश, व्यक्ति आदि पर आधिपत्य का वर्णन है । १७वें ग्रहयुद्धाध्याय में ग्रहों के मध्य युद्ध के कारण और फल का विवेचन है । १८वें शशिग्रहसमागमाध्याय में चन्द्रमा के साथ ग्रहों के योग के फल बताए गए हैं । १९वें ग्रहवर्षफलाध्याय के २२ श्लोकों में सूर्य आदि ग्रहों के वर्षाधिपतित्व के आधार पर फल निरूपण किया गया है । २०वें ग्रहश्रृंगाटकाध्याय में ताराग्रहों के उदयास्तवशात, नक्षत्रस्थगृहवशात् फल का वर्णन है। २१वें से गर्भलक्षणाध्याय से लेकर २८वें सद्योवर्षणाध्याय तक ८ अध्यायों में वृष्टि का अतिविस्तार पूर्वक विचार किया गया है, जिसमें मेघों के गर्भ–लक्षण का काल, फल और नक्षत्राधारित सुवृष्टि–अतिवृष्टि–अनावृष्टि सम्बन्धी फल, धान्य–परिमाण, विविध योगों में सुभिक्ष–दुर्भिक्ष की विविध स्थितियां वर्णित हैं । २९वें कुसुमलताध्याय से लेकर ३१वें दिग्दाहलक्षण तक प्रकृति के विविध स्वरूपों वृक्ष, सन्ध्या एवं दिशाओं के लक्षणवशात् विविध फल कहे गए हैं । ३२वें भूकम्पलक्षण के ३२ श्लोकों में भेद, मण्डल के आधार पर विविध प्रदेशों में प्रभाव आदि का वर्णन है । ३३वें उल्कालक्षणाध्याय में उल्का के स्वरूप, भेद और फल का वर्णन है। ३४वें परिवेशलक्षणाध्याय में परिवेष के स्वरूप, शुभाशुभ भेद और उसके फल का निरूपण है। ३५ वां इन्द्रायुधलक्षणाध्याय, ३६वां गन्धर्वनगर, ३७ वां प्रतिसूर्य, ३८वां रजोलक्षण, ३९ वां निर्घातलक्षण, ४०वां सस्यजातकाध्याय, ४१ वाँ द्रव्यनिश्चय और ४२वां अर्घकाण्ड अध्याय है। इनमें नाम के अनुरूप विषयों के लक्षण और फल का कथन किया गया है। ४३वें इन्द्रध्वज सम्पदाध्याय के ६८ श्लोकों में इंद्रध्वज की उत्पत्ति और उसके फल का निरूपण है । ४४वें नीराजनाध्याय में नीराजन करने के समय के साथ शान्ति के विधान का वर्णन है । ४५वें खंजनलक्षणाध्याय में खंजन दर्शन का फल वर्णित है । ४६वें उत्पाताध्याय में भौम, दिव्य और आन्तरिक्ष इन त्रिविध उत्पातों के लक्षण और फल पर विचार किया गया है । ४७ वें मयूरचित्रकाध्याय में ग्रहों के नक्षत्रों में स्थिति (क्रान्ति और शर) के

आधार पर फल का वर्णन है । ४८वें पुष्यस्नानाध्याय में नामानुरूप वर्णन है । ४९वें पट्टलक्षण और ५०वें खड्गलक्षणाध्याय में क्रमशः राजा के मुकुट और खड्ग के प्रमाण, फल आदि का वर्णन है । ५१वें अंगविद्याध्याय में अंग–स्पर्श के फल का और ५२वें पिटकलक्षणाध्याय में पिटक के लक्षण का फल वर्णित है । ५३वें वास्तुविद्याध्याय में वास्तुदेवोत्पत्ति, विविध गृह–प्रमाण, शल्य आदि के शुभाशुभफल का विचार है । ५४वें दकार्गल में भूमिस्थ जल के ज्ञान की विधियों का वर्णन, ५५वें वृक्षायुर्वेद में वृक्षों की चिकित्सा का वर्णन है । ५६वें प्रासादलक्षण, ५७वें वज्रलेप और ५८वें प्रतिमालक्षण में क्रमशः नामानुरूप वास्तुशास्त्रीय विषयों का विचार किया गया है । ५९वे अध्याय से लेकर १०७वें अध्याय तक श्व–कुक्कुट–कूर्म–छागल–हस्ति–अश्वादिकों के लक्षण और उनके फल बताए गए हैं, पुरुष–स्त्रीलक्षण, चामर–दंड आदि के लक्षण भी बताए गए हैं ।

3.5 संहिता स्कन्ध का उन्नतिकाल

संहिता के सभी विषय बृहत्संहिता ग्रन्थ में वर्णित हैं जिनका विकास आगे चलकर हुआ। जिसके फलस्वरूप कालिदास का ज्योतिर्विदाभरण, रामदीन का बृहद्दैवज्ञरञ्जन, मयूरचित्रक, बल्लासेन का अद्भुतसागर एवं भद्रबाहु का भद्रबाहुसंहिता, रत्नपरीक्षा, वर्षप्रबोध आदि ग्रन्थ एवं विविध वास्तु–विषयक–ग्रन्थ, विविध सामुद्रिक–ग्रन्थ, विविध मुहूर्त–विषयक ग्रन्थ प्रकाश में आए जिनके कारण संहिता स्कन्ध की उन्नति हुई। इनमें एक ग्रन्थ का संक्षेप में उल्लेख यहां किया जाता है।

3.5.1 भद्रबाहु संहिता

जैन सम्प्रदाय के आचार्य भद्रबाहु के द्वारा रचित यह ग्रन्थ संहिता के विषयों का विशद वर्णन प्रस्तुत करता है । ग्रन्थारम्भ के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि राजा सेनजित के द्वारा निमित्त (शकुन या चेष्टा) संबंधी जिज्ञासा करने पर आचार्य भद्रबाहु ने जो उत्तर दिया वही ग्रन्थ में विद्यमान है । यद्यपि इस ग्रन्थ में उल्का, परिवेष, विद्युत्, अभ्र, सन्ध्या, मेघ, वात, प्रवर्षण, गन्धर्वनगर, गर्भलक्षण, यात्रा, उत्पात, ग्रहचार, ग्रहयुद्ध, स्वप्न, मुहूर्त करण, शकुन, पाक, ज्योतिष, वास्तु, इन्द्रसम्पदा, लक्षण, चिह्न विद्या, औषध प्रभृति सभी निमित्तों के बलाबल, विरोध और पराजय के निरूपण करने की प्रतिज्ञा की है तथापि उपलब्ध ग्रन्थ में जितने अध्याय प्राप्त हैं, उनमें मुहूर्त तक ही वर्णन मिलता है। अवशेष विषयों का प्रतिपादन २७वें अध्याय से आगे आने वाले अध्यायों में हुआ होगा । व्यवहार, ज्योतिष, निमित्त, शरीर एवं स्वर ये पाँच खण्ड भद्रबाहु संहिता में हैं। इस ग्रंथ में एक विलक्षण बात यह है कि पाँच खण्डों के होने पर दूसरे खण्ड को मध्यम और तीसरे खण्ड को उत्तर खण्ड कहा गया है।

प्रथम अध्याय में ग्रन्थ के वर्ण्य विषयों की तालिका प्रस्तुत की गयी है और निमित्तशास्त्र के ज्ञान को ऐहिक जीवन के व्यवहार को चलाने के लिए आवश्यक बताया गया है । द्वितीय अध्याय में उल्का–निमित्त का वर्णन किया गया है । इस ग्रन्थ में उल्का के धिष्ण्या, उल्का, अशनि, विद्युत् और तारा ये पाँच भेद बताए गए हैं । उल्का का फल १५ दिनों में, धिष्ण्या और अशनि का ४५ दिनों में एवं तारा और विद्युत् का ६ दिनों में प्राप्त होता है। तारा का जितना प्रमाण है उससे लम्बाई में दूना धिष्ण्या का है। विद्युत् नाम वाली उल्का बड़ी कुटिल टेढ़ी–मेढ़ी और शीघ्रगामिनी होती है । उल्काओं की बनावट, रूप–रंग आदि के आधार पर फल बताया गया है। तृतीय अध्याय में ६६ श्लोक हैं। इसमें विस्तारपूर्वक उल्कापात का फलादेश बताया गया है। चौथे अध्याय में ३६ श्लोकों में परिवेश का वर्णन किया गया है। परिवेश दो प्रकार के होते हैं–प्रशस्त और अप्रशस्त। वर्षा ऋतु में सूर्य या चन्द्रमा के चारों ओर एक

गोलाकार अथवा अन्य किसी आकार में एक मण्डल–सा बनता है, यही परिवेष कहलाता है। सूर्य और चन्द्रमा के परिवेष के वर्ण आदि के आधार पर फल भी बताए गए हैं । पांचवें अध्याय में २५ श्लोकों में विद्युत् का वर्णन किया है। छठे अध्याय में अभ्र अर्थात् आकाश का लक्षण बताया गया है । आकाश के आधार पर वृष्टि आदि फल का भी निरूपण इसमें है । सातवाँ अध्याय सन्ध्या लक्षण है, जिसमें २६ श्लोक हैं । इस अध्याय में प्रातः और सायं सन्ध्या का लक्षण विशेष रूप से बतलाया गया है तथा इन सन्ध्याओं के रूप, आकृति और समय के अनुसार फलादेश बतलाया गया है । आठवें अध्याय में २७ श्लोकों में मेघों का लक्षण बतलाया गया है। इस अध्याय में मेघों की आकृति, उनका काल, वर्ण, दिशा एवं गर्जन अनुसार फलादेश का वर्णन है। नौवें अध्याय में वायु का वर्णन है । वायु की विशेषता, उपयोगिता, स्वरूप एवं प्रवाह का कालानुसार फल–कथन किया गया है। स्वप्नाध्याय में सूचना देने वाले स्वप्नों का वर्णन किया गया है। इस अध्याय में दृष्ट, श्रुत, अनुभूत, प्रार्थित, कल्पित, भाविक और दोषज इन सात प्रकार के स्वप्नों में से केवल भाविक स्वप्नों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। सत्ताईसवें अध्याय में वस्त्र, आसन, पादुका आदि के छिन्न होने का फलादेश कहा गया है ।

3.6 संहिता के उपस्कन्ध व संहिता ज्योतिष की संभावनाएं

संहिता स्कन्ध अपने आप में एक अत्यन्त विशाल कल्पवृक्ष के समान है, जिसमें प्रकृति एवं खगोलीय तादात्म्य के आधार पर विविध देशों, प्राणियों और वनस्पतियों में होने वाले भेद और फल का बड़े ही उदात्त भाव से वर्णन किया गया है। प्राणिविज्ञान, वनस्पतिविज्ञान, कृषिविज्ञान, वृष्टि एवं ऋतुविज्ञान, पर्यावरणविज्ञान, जलविज्ञान, अर्थशास्त्र, भूगर्भविज्ञान भूगोल और मनोविज्ञान के साथ–साथ सामुद्रिकशास्त्र, रत्नविज्ञान, धर्मशास्त्र, कर्मकाण्ड का विज्ञानिक पक्ष, स्वरोदयशास्त्र, मुहूर्तशास्त्र, स्वप्नशास्त्र के सभी विषयों का अंतर्भाव सरलता से इस स्कंध में होता है ।

यदि इन सभी विषयों को स्थूलरूप से वर्गीकृत करें तो संहिता के कुछ उपस्कंध समझ में आते हैं जिन पर भारतीय ज्योतिष के इतिहास में ग्रन्थ मिलते हैं ।

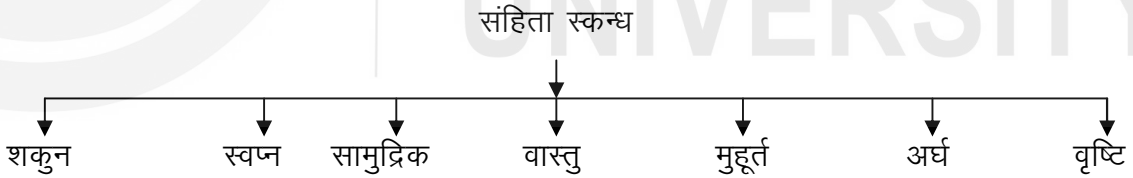

इन उपस्कन्धों के भी विषय की दृष्टि से और विभाग हो सकते हैं, जिससे कि संहिता में शोध को नई दिशा मिल सके ।

3.6.1 शकुन

प्राकृतिक संकेत या जानवरों एवं पक्षियों की चेष्टाएं और ध्वनियां अंगस्फुरण (अंगों का फड़कना) तथा पल्लीपतन आदि मुख्यतया शकुन के विचारणीय विषय हैं । वसन्तराज का 'वसन्तराजशाकुनम्' शकुनशास्त्र का प्रसिद्ध ग्रन्थ है । शुभ और अशुभ इन दोनों प्रकार के शकुनों के फल इस ग्रन्थ में वर्णित हैं । बृहत्संहिता में उत्पातों भूकम्प आदि के लक्षण में एवं कृषि की सूचना में पक्षियों की विशेष चेष्टाओं का वर्णन है, जिनके आधार पर उत्पातों, भूकंप आदि का पूर्वानुमान प्राचीन समय में सांहितिक आचार्य किया करते थे । कालक्रम से इसका लोप हो गया । किन्तु विडम्बना यह है कि पाश्चात्य देशों एवं जापान आदि में पशु–पक्षियों की इन चेष्टाओं पर गंभीर अध्ययन और शोध हो रहे हैं जिनके आधार पर प्राकृतिक–उत्पात आदि के पूर्वानुमान में वैज्ञानिक सफल

भी हो रहे हैं । इसके अतिरिक्त बृहत्संहिता में एवं वास्तु के ग्रन्थों में भी वास्तु–निर्माण के पूर्व सूत्रपात शल्योद्धार के समय शकुन का विचार किया गया है । मुहूर्त–ग्रन्थों यथा 'मुहूर्तचिंतामणि', 'मुहूर्तमार्तण्ड', 'रत्नमाला' आदि में यात्रा–मुहूर्त के वर्णन के प्रसंग में भी शकुनों का विचार है । इन शकुनों पर भारत में भी शोध की संभावनाएं अनंत हैं, आवश्यकता इस बात की है कि उच्च–शिक्षा संस्थान इस ओर गम्भीरता पूर्वक ध्यान दें ।

3.6.2 स्वप्न

स्वप्न पर आधारित सूत्र प्रायः पुराणों में मिलते हैं। मत्स्य पुराण, अग्निपुराण, नारदपुराण और अन्य पुरानों में स्वप्न के शुभाशुभ फल का विचार किया गया है। स्वप्नदर्शन के प्रकार और परिणाम पर भी दैवज्ञों ने सविस्तार प्रकाश डाला है, जो ज्योतिष के अतिरिक्त संसार के अन्य किसी भी चिन्तन में दृष्टिगोचर नहीं होता। यद्यपि ऐसे चिन्तन ब्रह्मवैवर्त आदि पुराणों में प्राप्त होते हैं, किंतु वे विचार भी ज्योतिषतत्त्व मूलक ही हैं। यथा–

स्वप्ने हसति यो हर्षाद्विवाहं यदि पश्यति।
नर्तकं गीतमिष्टञ्च विपत्तिस्तस्य निश्चितम्।।

(स्वप्नविमर्श, दुःस्वप्नप्रकरण, श्लोक २)

स्वप्नों पर अधिक कार्य स्वतन्त्र रूप से प्राप्त नहीं होता है, अतः संहिता के इस भाग पर यदि मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्म–विद्या के क्षेत्र में कार्य कर रहे विद्वान् मिलकर शोध करें तो निश्चय ही मनुष्य को समझने और कई मानसिक रोगों से लड़ने में सफलता प्राप्त की जा सकती है ।

3.6.3 सामुद्रिकशास्त्र

समुद्र मुनि द्वारा प्रतिपादित यह सामुद्रिक शास्त्र बड़े ही महत्त्व का है । इस शास्त्र में स्त्री–पुरुषों की आकृति, वर्ण, हस्तरेखा एवं विविध अंगों की बनावट के आधार पर न केवल उसकी प्रकृति का अपितु भविष्य में घटित होने वाली शुभ–अशुभ घटनाओं का भी फलादेश किया जाता है । महर्षि समुद्र के अनुसार ललाट में ७ रेखाएं ऊपरसे क्रमशः १–शनिस्वामिनी, २–गुरुस्वामिनी, ३–मंगलस्वामिनी, ४–सूर्यस्वामिनी, ५–भृगुस्वामिनी, ६–बुधस्वामिनी तथा ७–चन्द्रस्वामिनी होती हैं। जिनके आकार, लम्बाई, स्थिति आदि के अनुसार फलादेश किया जाता है। इसी प्रकार हस्त और चरण की रेखाएँ भी पृथक्–पृथक् फल प्रदान करती हैं तथा नेत्रों के आकार, रंग, कर्ण, ओष्ठ, नासिका एवं दन्तादि अंगों की आकृतियाँ भी अलग–अलग फल प्रदान करती हैं, जिन्हें ज्ञान और अभ्यास के द्वारा जाना जा सकता है।

इसी प्रकार शरीर के विभिन्न अंगों में स्थित चिह्नों और तिलों के स्वरूप और स्थितियाँ भी तत्सम्बद्ध मानव के जीवन के सन्दर्भ में बहुत कुछ फलों की संसूचना देते हैं। यहाँ तक कि चिह्नों के द्वारा जातक की राशि, लग्न और नक्षत्र का ज्ञान भी प्राप्त हो जाता है और मनुष्य के सन्तानसंख्या, दाम्पत्यसुख, भ्राता, भगिनी, स्त्री, सम्पत्ति और चरित्र का ज्ञान भी ज्योतिषी को हो जाता है ।

3.6.4 वास्तु

वसयोग्यभूमि या गृहनिर्माणभूमि की वास्तु संज्ञा है । वास्तुशास्त्र का जितना विस्तार हुआ उतना अन्य उपस्कंधों का नहीं हुआ । इसका कारण यह है कि मत्स्यपुराण, अग्निपुराण, स्कन्दपुराण, विष्णुधर्मोत्तरपुराण आदि में वास्तु के विषय पर्याप्त–मात्रा में

मिले जिनका पल्ल्वन स्वतन्त्र–ग्रन्थों के रूप में हुआ । इसके अतिरिक्त कश्यप, नारद, विश्वकर्मा, मयासुर, नग्नजित आदि पौराणिक आचार्यों ने भी अपने–अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन उस काल में किया । वास्तु के १८ आचार्य तो स्वयं मत्स्यपुराण में गिनाए गये हैं ।

वास्तु को मुख्यतया १. सामान्यगृह, २.राजगृह एवं ३. देवगृह एवं ४. नगर–निवेश में विभक्त किया जा सकता है । इन तीनों ही प्रकार के वास्तु–निर्माण में ध्यातव्य मुख्य बिंदु – भूमिपरीक्षण, शल्योद्धार, आयादिसाधन, 'ध्रुवादि'गृह–संज्ञा, शतपद आदि विविध वास्तु चक्र, गृहारंभ, विविध शुभाशुभयोग, द्वारस्थापन, इष्ट–चयन विविधशाला–युक्त गृहों के भेद एवं उनकी संज्ञाएं, गृह में विविध कक्षों की व्यवस्था, सर्वतोभद्र आदि प्रासादों के भेद, देवालय कक्ष–सज्जा, प्रतिमा, शिल्प एवं चित्र कला, वापी–कूप–तडाग–उपवन आदि का निर्माण, नगर में मार्ग–चत्वर–प्रणाली आदि की व्यवस्था एवं राजा, मंत्री, अधिकारी–गण व प्रजा के आवासों की व्यवस्था आदि विषय वर्णित होते हैं ।

'विश्वकर्मवास्तु', 'विश्वकर्मप्रकाश', 'मयमत', 'अपराजितपृच्छा', 'मानसार', 'समराङ्गणसूत्रधार', इत्यादि अनेकों स्वतंत्र ग्रन्थ तथा 'वास्तुरत्नावली', 'वास्तुसौख्य', 'बृहद्वास्तुमाला' आदि संकलन–ग्रन्थ भी मिलते हैं ।

इस शाखा पर आज भी सर्वाधिक कार्य हो रहे हैं किन्तु प्राच्य–सिद्धान्तों का अध्ययन और शोध की अभी भी महती आवश्यकता है, विशेषकर प्रासाद–वास्तु एवं मंदिर–वास्तु के क्षेत्र में । इस कर्म में यदि नव्य–यंत्रों की सहायता ली जाए तो न केवल प्राच्य–वास्तु–सिद्धांतों को समझा जा सकता है अपितु प्राच्य–वास्तु–कला को पुनः जीवित करके इस क्षेत्र में भारत की प्रतिष्ठा को पुनःस्थापित किया जा सकता है।

3.6.5 मुहूर्त

यद्यपि वैदिक एवं पौराणिक–साहित्य में मुहूर्त के पर्याप्त बीज मिलते हैं, जिनका विकास उस दृष्टि से नहीं हुआ जिस प्रकार होना चाहिए था तथापि स्मृति–ग्रंथों और गृह्य–सूत्रों के प्रभाव के कारण इस शाखा का पर्याप्त विकास १०वीं से १७वीं शताब्दी के मध्य हुआ और अनेकों मुहूर्त ग्रन्थों यथा 'रत्नकोष', 'रत्नमाला', 'मुहूर्तगणपति', 'मुहूर्तमार्तण्ड', 'मुहूर्तपदवी', 'मुहूर्तदिवाकर', 'मुहूर्तचिन्तामणि', 'विवाहवृन्दावन', 'ज्योतिर्विदाभरण', 'बृहद्दैवज्ञरंजन' आदि का निर्माण हुआ ।

3.6.6 अर्घ

वस्तुओं के मूल्य–निर्धारण का विचार अर्घ नाम से प्रसिद्ध है । मूल्य–वृद्धि को 'महर्घ' एवं सामान्य को 'समर्घ' कहते हैं। नक्षत्रों में ग्रहों के संचरण, ग्रहों की शर–क्रान्ति–युति, संक्रान्ति, सर्वतोभद्र–चक्र आदि के द्वारा वस्तुओं के अर्घ का विचार संहितास्कंध में मिलता है, जिस पर शोध एवं अध्ययन वर्तमान समय की मांग है । शेयर–मार्केट में वस्तुओं के मूल्य का आंकलन जैसे वाणिज्य–शास्त्र के जानकार करते हैं वैसे ही यदि ज्योतिषी भी इसका अध्ययन करके पूर्व अनुमान करे तो ये आश्चर्यजनक परिणाम निकल सकते हैं ।

3.6.7 वृष्टि

वर्षा के विचार से संहिता–ग्रन्थ भरे पड़े हैं । वर्षा के पूर्वानुमान का अत्यधिक विचार इस स्कंध में है । बृहत्संहिता में इससे सम्बंधित ८ अध्याय हैं, जिनमें मेघों के गर्भ और प्रसव–काल से लेकर विविध योगों का विचार किया गया है । 'कृषिपाराशर' एवं

'शाङ्र्गधरसंहिता' में वर्षा के अनेकों योग वर्णित हैं । संहिता स्कंध में वर्णित वृष्टि–विचार की एक मुख्य विशेषता यह है कि वो वृष्टि का अनुमान वर्षा–काल के ३ से ६ महीने पूर्व मेघों को देखकर लगाते हैं, जिसे मेघ का गर्भधारण कहते हैं । यह गर्भधारण जिस नक्षत्र और संक्रान्ति में हुआ है उस समय ग्रहों की स्थिति का विचार करके भविष्यमाण वर्षा के काल और मात्रा का अनुमान संहिता–स्कंध में किया जाता है। यदि मौसम–वैज्ञानिक और संहिता–स्कन्ध के विद्वान् मिलकर इस दिशा में शोध करें तो समाज का अत्यन्त कल्याण हो सकता है ।

इसके अतिरिक्त इन उपस्कन्धों के भी अनेकों भेद हो सकते हैं, जिनका विस्तार–भय से यहाँ उल्लेख करना संभव नहीं है किन्तु यह तय है कि संहिता–स्कन्ध की परिकल्पना प्राचीन ऋषियों द्वारा जिस उद्देश्य से की गयी थी वह साकार व सफल तभी हो सकती है जब इसके प्रत्येक उपस्कंध पर वर्तमान परिप्रेक्ष्य में परिणाम–प्रद शोध किए जाएं ।

3.8 सारांश

विविध राशियों, नक्षत्रों में ग्रहों के गमन के आधार पर समाज में होने वाला शुभाशुभ फल कथन संहिता का विषय है । सम्पूर्ण भारतवर्ष (प्राचीन बृहत्तर भारत) को २७ नक्षत्रों के द्वारा ६ भागों में विभाजित करके इसके आधार पर, अगस्त्य व सप्तर्षियों के गमन का विविध स्थलों पर फल का निर्धारण, ग्रहयुद्ध, ग्रहवर्ष फल, वर्षा के विविध योग, कुसुमलता, परिवेष, परिघ, वायु–प्रवाह, उल्कापात, दिग्दाह और भूकम्प के लक्षण और शुभाशुभ विचार, वास्तुविद्या, अंगविद्या, प्रासादलक्षण प्रतिमालक्षण प्रतिष्ठापन, वृक्षायुर्वेद, उदगार्गल, ३ प्रकार के दिव्य, आन्तरिक्ष एवं भौम उत्पातों के लक्षण एवं शान्ति के उपाय, मयूरचित्रक, रत्नपरीक्षा आदि विविध विषय संहिता के हैं, जिनका कालक्रम गम्भीर अध्ययन होने के कारण उसकी प्रगति हेतु अनेक ग्रन्थ लिखे गए । आज भी इस स्कन्ध के सम्यक विकास से समाज को नई–दिशा दिखाई जा सकती है।

3.9 शब्दावली

संस्थान – ऊर्ध्व–अधोगमनादि के कारण तोरण, हल आदि विविध आकार।

अनुवक्र – वक्रगति के पश्चात् पुनः स्पष्टगति से गमन का विचार।

ग्रहभक्ति – सूर्य आदि ग्रहों का देश, वर्ण, व्यवसाय, वस्तुओं पर अधिकार (आधिपत्य)।

नक्षत्रव्यूह – नक्षत्रों का देश, वर्ण, व्यवसाय, वस्तु आदि पर आधिपत्य का विचार।

ग्रहयुद्ध – ग्रहों के मध्य उनके दक्षिणोत्तर व ऊर्ध्वाधर स्थिति से उत्पन्न युद्ध का विचार।

परिवेष – प्रतिसूर्य की परिधि (मण्डल) का विचार।

परिघ – सूर्योदय और सूर्यास्त के समय मेघों की स्थिति का विचार।

क्षितिचलन – भूकम्प।

सन्ध्याराग – सन्ध्याकाल के रक्तत्व का विचार।

अर्घकाण्ड – वस्तुओं के मूल्य का विचार।

वायसविद्याचक्र–मृगचक्र–श्वचक्र = शकुन शास्त्र में कौवे, मृग, कुत्ते आदि की चेष्टाओं के द्वारा फल–कथनविद्या।

3.10 बोध प्रश्न

1. संहिता ज्योतिष के विषय का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. संहिता–स्कन्ध के प्रतिष्ठा–काल पर प्रकाश डालिए।
3. संहिता स्कंध के इतिहास में वराहमिहिर की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।
4. संहिता स्कन्ध की सम्भावनाओं पर प्रकाश डालिए।

3.11 उपयोगी पुस्तकें

1. भारतीय ज्योतिष (मूल लेखक– शंकर बालकृष्ण दीक्षित), झारखंडी शिवनाथ (१९९०) उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ (द्वितीय संस्करण)।
2. भारतीय ज्योतिष का इतिहास, प्रसाद गोरख (१९९०), उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
3. भारतीय ज्योतिष, नेमीचन्द्र शास्त्री (२०१४), भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली।
4. बृहत्संहिता (भट्टोत्पलटीकासहिता) संपूर्णानंद सं.वि.वि., १९९७।
5. भद्रबाहुसंहिता, भारतीयज्ञानपीठ प्रकाशन, २००९।